DAMAGE BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182374
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 S94B Accession No. H1104

Author शुक्ल, कुमारी

Title बिखरी पंखुड़ियाँ 1950.

This book should be returned on or before the date last marked below.

बिखरी पंखुड़ियाँ

लेखिका

श्रीमती फूलकुमारी शुक्ल एम्० ए०, बी० टी०

मिलने का पता—

अवध पब्लिशिंग हाउस

पानदरीबा, लखनऊ

प्रथम संस्करण] [मूल्य १।।)

अवध पब्लिशिंग हाउस
लखनऊ

सर्व अधिकार सुरक्षित

मुद्रक—
नव-ज्योति-प्रेस,
पानदरीबा, लखनऊ

भूमिका

बहन फूलकुमारी शुक्ल अपनी प्रारम्भिक कविताओं का यह संग्रह हिन्दी संसार के सामने रख रही है।

इन कविताओं से लेखिका की प्रतिभा एवं उनकी कवित्वशक्ति का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता और न किया जाना चाहिये क्योंकि लेखिका अपने बाल्य-काल की रचनाओं की अपूर्णता से भली-भाँति परिचित हैं—:"इस रचना में व्याकरण सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ भरी है और छन्दों की गति भी अधिकतर भंग हो गई है। पर अब मैं संशोधन नहीं करना चाहती क्योंकि इन पदों का जन्म इसी प्रकार हुआ था; ये मेरे बचपन के द्योतक हैं।..."

लेखिका में ईमानदारी है। साथ ही एक ऐसा साहस है जो उसमें एक शक्तिशाली कलाकार की आत्मा को प्रदर्शित करता है। मेरी यह हार्दिक भावना है कि लेखिका साहित्यिक सृजन में नित्य-नवीन उन्नति करे।

हिन्दी संसार के साथ-साथ मैं भी बहन फूलकुमारी की प्रौढ़ कृतियों की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करूँगा। हो सकता है कि उनमे एक शक्तिशाली सृजनात्मक महिला-कलाकार के दर्शन हों।

भगवतीचरण वर्मा

कुछ शब्द

भारतभूमि वर्षों तक दासता दानवी से निरन्तर युद्ध करने के उपरान्त आज २६ जनवरी १९५० ई० को संसार के सम्मुख स्वतंत्र रूप से उपस्थित हुई है। किन्तु उसके शरीर पर तरुण घावों के चिन्ह विद्यमान हैं, जहाँ से बलपूर्वक मांस काटा गया है। वह अपूर्ण है उसका कलेवर छिन्न-भिन्न है। परन्तु वह मुक्त अवश्य है।

यही दशा इस अभागिनी लेखिका की भी हुई। बारम्बार मृत्यु के मुख में प्रवेश करके भी जीवित रही। स्वतंत्रता का मूल्य कैसे चुकाया जाता है इसे जानती है। अब यह समाज में शिक्षित और स्वाधीन होकर विचरती है। किन्तु इसके क्षत-विक्षत तन मन के लिए कोई औषधि नहीं है जो इसे स्वस्थ और सुखी बना सके।

इसी प्रकार इस पुस्तक की भी दुर्दशा हुई। इसे अग्नि में फूंका गया, गोमती में डुबाया गया और वर्षों तक कारागार में बन्द रक्खा गया। परन्तु आज यह भी जन समक्ष प्रकाशित हो रही है किन्तु अपूर्ण आकार लेकर।

मैंने १५ वर्ष की आयु तक अपनी कविताओं का कोई संग्रह नहीं किया परन्तु सोलह, सत्रह और अठारह वर्ष के भीतर जो कुछ लिखा उसे पुस्तकों के रूप में सुरक्षित रक्खा था। जिसमें एक मुक्तक कविताओं का संग्रह था, दूसरा नाटक और तीसरी निबन्धावली थी। मेरी इन सब रचनाओं का क्या हुआ इसका दुःखद वर्णन करने की यहाँ पर इच्छा नहीं है और न अवकाश ही। केवल ऊपर के संकेतों से ही पाठक पाठिकाएँ संतोष कर लें। मैं इस पुस्तक में विशेष कर उन पदों का संकलन कर सकी हूँ जिनको कि मेरी दिवंगता प्रिय पुत्री माधुरी ग्रामोफोन के रेकार्डो की ध्वनि में अपना मधुर स्वर मिलाकर प्रायः गाया

करती थीं। वह संगीत की प्रतिभा लेकर जन्मी थी परन्तु वह बच्ची अब कहाँ है..................?

युग बीत गए और मेरी बहुत सी रचनाएं विस्मृति के गर्त में विलीन हो चुकी हैं। और जो कुछ स्मरण है वह उस बालिका का कौतुक गान ही समझिए।

इस पुस्तक में छन्दों की गति के अनुसार कविताओं का संग्रह नही हुआ है, किन्तु विषयानुसार पद एकत्रित किए गए हैं। इस रचना में व्याकरण सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ भरी हैं और छन्दों की गति भी अधिकतर भंग हो गई है; पर मैं अब संशोधन नहीं करना चाहती क्योंकि इन पदों का जन्म इसी प्रकार हुआ था। ये मेरे बचपन के द्योतक हैं। यह मेरी सर्वप्रथम बाल्यकाल की रचना है अतः वाचकवृन्द मुझे क्षमा प्रदान करें।

लखनऊ।
२६ जनवरी १९५० ई०

फूलकुमारी शुक्ल

कृष्णायनमः

बिखरी पंखुड़ियाँ

खिला कुसुम जब बाल भाव का,
जीवन में थीं दुर्घड़ियाँ।
हिम-आँधी की निष्ठुरता से,
बिखर गईं ये पंखुड़ियाँ।
स्मृति कुञ्ज से फिर चुनती हूँ,
किन्तु विलोक हुई आरत।
छिन्न कलेवर है बहुतों का,
जैसे यह खंडित भारत।

लखनऊ,
२६ जनवरी १९५०

फूलकुमारी शुक्ल
एम॰ ए॰, बी॰ टी॰

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय	पृष्ठ
१	ध्यान	१
२	पगली को प्राप्ति	३
३	मातृभूमि	५
४	मातृ वन्दना	७
५	स्वप्न	९
६	लेखनी लीला	१३
७	मसि महिमा	१६
८	पुस्तक परिचय	१८
९	ग्रीष्म काल	२२
१०	वर्षा वर्णन	२५
११	रक्षा बन्धन	२६
१२	जन्माष्टमी	२८
१३	विजयादशमी	३०
१४	दीवाली	३७
१५	भैय्या दूज	३९
१६	हिमहास	४०
१७	बसंत	४३
१८	होलिका दाह	४५
१९	प्रभात फेरी	५३
२०	स्वराज्य साधन	५५
२१	स्वराज्य संग्राम	५७
२२	जलियान वाला बाग	५८
२३	बाल हठ	६०
२४	स्त्री समाज	६२

२५—कुमाताएं ६४
२६—उपेक्षित शिशुता ६५
२७—विलक्षण बाल्यावस्था ६८
२८—क्षणिक किशोरावस्था ७१
२९—पिता ७३
३०—स्वजन ७६
३१—जीवन ज्योति ७८
३२—मुलेखन चन्द्र ७९
३३—भ्रमरालोचक ८२
३४—कवि क्रीड़ा ८५
३५—संपादक संतोष ८८
३६—पति परमेश्वर ९१
३७—माता के सरवन ९५
३८—छात्र की चातुरी १००
३९—काया पलट १०५

ध्यान

अंतस्तल में चंचल चित पर,
संयम का आया शासन।
संचित पाप पुंज कल्पों के,
मिटे गया उनका त्रासन।
नवल नर्तकी नित तृष्णा भी,
श्रांत हुई करके नर्तन।
टूटे तार स्मृति सारंग के,
बन्द हुआ भौतिक क्रंदन।

निर्जनता के कानन में,
लघु काया का न रहा कंपन।
शून्य दिशाओं के निकुञ्ज में,
छूटा स्वाँसों का बंधन।
मलयानिल की मृदु गति में,
करती अनन्त का आलिंगन।
अम्बर पथ में प्रेम मिलन था,
वसुन्धरा में है बिछुरन।

शशि किरणों में हंसते देखा,
सरसिज में सकुचान।
दिनकर में तपते पाया,
हैं कुमुदों से लजवान।
चंचलता चपला में मिलती,
निश्चल शैल समान।
सबकी छवि में छाई,
मेरे मोहन की मुस्कान।

ऊषा में आवाहन है क्या,
संध्या में विभु विसर्जन।
अर्ध निशा मध्याह्नों में भी,
लगता है मन में आसन।
सप्त स्वरों में रवि शशि तारे,
करते हैं जिसका वन्दन।
अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ियों में,
होता है उसका अर्चन।

पगली को प्राप्ति

सरि सागर बीच लगाऊँ पता,
जल ऊर्मियों में अकुलाती हुई।
मग धूल कणों में निहारा करूँ,
तन आतप में झुलसाती हुई।
प्रति पादप से नित पूँछूँ तुम्हें,
वन बेलियों में उलझाती हुई!
निशि वासर वाहि से मौन बनी,
उर अंतर में बिलखाती हुई।

पिक हंस मयूर शुकादिक को,
अति प्यार से पास बुलाती हुई।
निज नेह के बूँद बिछा वसुधा पर,
प्रेम सन्देश सुनाती हुई।
कर कोटि कलाप प्रलाप उन्हें,
प्रिय देश दिशा दिखलाती हुई।
फिर वेग के साथ उड़ा सब को,
नभ में दृग दृष्टि लगाती हुई।

गिरि कन्दर कानन में भ्रम के,
अति वादियों से भिड़ जाती हुई।
बहु तर्क वितर्क मनीषियों से कर,
नास्तिकों से लड़ जाती हुई।
तप तीरथ होम विधान क्रिया,
कर आस्तिकों को समझाती हुई।
पुनि शक्ति विहींन कलेवर हो,
गिरी भू पर मैं मुरझाती हुई।

चेती अचंभित थी चित में,
प्रभु दर्शन सम्मुख पाती हुई।
मुख मण्डल विश्व प्रभा में भरा,
अधरों से विभा मुसकाती हुई।
भरपूर न खोल सकी पलकें,
रही नयनों से नीर बहाती हुई।
धरि शीश मिली पद पंकजों से,
भ्रमी भ्रन्ति में कल्प बिताती हुई।

मातृ भूमि

जय मातृ भूमि जय जन्म भूमि।
हिम शैल भाल वद्री विशाल,
शुभ सरिज्जाल गले गंगमाल।
उर उन्नत है विंध्या समान,
पय पूरित शुचि सरिता महान।
पद पूजित अंतिम अन्तरीप,
नव नूपुर जल के मंजु सीप।
तल तीरथ रामेश्वर सुधाम,
पग पावन नख लंका ललाम।
वर वारि वरुण सागर स्वरूप,
है चारु चरण धोता अनूप।
कर दक्षिण द्वारावति दुवार,
भुज बाम पुरी तट पर प्रसार।
वन केश पाश विस्तृत विशाल,
गुम्फित प्रसून दाड़िम रसाल।
मृदु मन्जुल वाणी वेद सत्य,
संगीत सुधा गीतादि नित्य।
गति स्वाँस सुखद सुरभित समीर,
तन स्वेद सलिल सर में सुनीर।

बहु वीर वत्स सरसिज सभाग,
जग जौहर का उड़ता पराग।
नभ नील जटित तारक अनंत,
अविचल अंचल शोभा दिगंत।
दिन में दिनेश निशि में निशेश,
है शीश मुकुट शोभित विशेष।
रण वाहन है केहरि कराल,
रिपु कुल कुञ्जर कंपित विहाल।
धनु शक्ति शूल जृम्भक कृपाण,
आयुध अमोघ वर्माग्नि वाण।
समरांगण शचण्डी प्रचण्ड,
दल दुष्ट दर्प किए खर्व खण्ड।
अरि आर्त पुकारे प्राण दान,
परित्यक्त किए दे अभय दान।
मुख तेज पुंज में भानु कांति,
हृद कुन्द इन्दु में दिव्य शांति।
हे विश्व मुक्ति अनुरक्ति धाम।
मम प्राण त्राण सहसों प्रणाम,
जय धर्म भूमि जय कर्म भूमि।

मातृ वन्दना

नमो जन्मदा प्राणदा मंगला,
नमो प्रेम की ज्योति जय हिंगला।

तुम्ही रक्षिका शूल संहारती,
तुम्ही शिक्षका ज्ञानदा भारती।

हुई भाव विश्वास में निश्चला,
बनी रक्त निस्वास में चंचला।

मृदुल्लोरियों के सुसंगीत में,
जीवन के संदेश के गीत में।

सुनी ज्ञान विज्ञान की मण्डना,
सिखी दम्भ पाखंड की खण्डना।

स्वसन्तान के कुंज की मालिनी,
यशोवेलि की आदि से पालिनी।

पिलाई पयोधार मन्दाकिनी,
भरी अङ्ग में शक्ति सौदामिनी।

विनाशी सभी क्रूरता भीरुता,
हुलासी हिये धीरता वीरता।

निर्माणिका राष्ट्र की तारिणी,
अपमान रिपुमान की हारिणी।

पतन और उत्थान हे अम्बिका,
तुम्हारे ही कर पल्लवों में छिपा।

पिता बन्धु सम्बन्ध संसार के,
निस्सार हैं वाहि व्यवहार के।

करूँ मैं तुम्हारी जो अवहेलना,
मिले कल्प भर नर्क में यातना।

मिटूंगी तुम्हारे ही सम्मान पर,
छुटे देह माँ मन्त्र का जाप कर।

पगों पंकजों के तले की विभा,
है स्वर्ग की शांति स्वर्णिम प्रभा।

उन्ही कंज की धूलि की वन्दना,
करूँ सर्वदा है यही कामना।

स्वप्न

सांध्य गान करके विहंगो ने,
मौन मंत्र था अपनाया।
श्यामल अंचल ले रजनी ने,
जगती तल पर फैलाया।

चेतनता ने छिप कर जिस में,
निद्रा की पी ली हाला।
उस सुषुप्ति में देखा मैंने,
स्वप्न लोक का उजियाला।

चन्द्र चुम्बिनी तप्त तरंगे,
हिन्द महासागर में थीं।
देश द्रोहियों की नौकाएँ,
उन के बीच भँवर में थीं।

बंग बम्बई के तट पर थे,
उन्चासो मारुत चलते।
शत्रुसेन सह जलयानों को,
वरुण लोक लेकर दुरते।

कोटि कलाधर नभ मण्डल में,
विश्वकर्मा से भी बढ़कर।
रम्य रश्मियों से मण्डप रच,
गूँथे बहु तारक चुनकर।

तिरंग पताका शत चपला सी,
नवो दिशा में लहराती।
चकाचौंध कर अरि आँखों में,
अन्तर छाती दहलाती।

बल विवेक साहस स्वशक्ति के,
स्तभों ने चारो ओर।
अचल अटल हो वसुन्धरा पर,
बाँधे थे किरणों के छोर।

नव रत्नों से जटित वसन था,
बिछा हुआ वसुधा भर में।
ऊषा संध्या और दुपहरी,
करती थीं जगमग जिन में।

कर्मयोग के उच्चासन पर,
शोभित थे भारतवासी।
न्याय नीति में निश्चल निष्ठा,
विश्व शांति के अभिलाषी।

हेम हिमाचल अचल मञ्च था,
भारत माँ जिसमें आसीन।
दिव्य दृष्टि से युक्त सभी जन,
देख रहे वैभव स्वाधीन।

सिंहासन के युग्म तटों पर,
थे अटके लोचन सबके।
जहाँ भाव अब मूर्तिमान थे,
चिर संचित कल्पित मनके।

मद-कुञ्जर दुर्मति देशों का,
था मूर्छित अंकुश खाकर।
ब्रिटिश सिंह वाहन बैठा था,
पंचानन से नत होकर।

यद्यपि शक्ति हीन थे दोनो,
लोलुपता फिर भी उनकी।
लार रूप में बह निकली जो,
साक्षी थी अंतस्तल की।

काल चक्र ले पश्चिम प्रहरी,
घूम रहा सीमा भर में।
धर्म दण्ड से पाल रहा था,
राजाज्ञा पूरब दिश में।

गत गौरव के चित्र लगे थे,
जिनसे बहु मिलते संदेश :
रघुकुल गौरव ब्रज भूषण के,
त्याग योग करते आदेश।

झालमाल में वैदेही थीं,
फैला पांचाली का चीर।

लक्ष्मी दुर्गा रण प्रांगण में,
पद्मा के जौहर की भीर;

वीर प्रताप शिवा साँगादिक,
था हमीर का भी अवरेख।
गरल पान से मृत कृष्णा को,
गुरु सुत दीवालों में देख।

युगुल इन्दु उरजों से माँ के,
छूटी स्नेह सुधा धारा।
प्रक्षालन कर उन चित्रों को,
पुनि नव जीवन संचारा।

भूतकाल शुभ वर्तमान को,
आया करने आलिंगन।
उठा भविष्य विपुल वैभव संग,
करते स्वागत अभिनन्दन।

आभा शोभा और विभा ने,
गाया ज्यों वन्देमातरम्।
वजी वेणु त्योंही मोहन की,
सहसा सभा उठी संभ्रम।

विकल प्राण थे चरण मिलन को,
आए जब लोचन के द्वार।
खुली पलक तब, मिटी झलक सब,
अब लगता सपना निस्सार।

लेखनी लीला

किस धातु से निर्मित हुई
किस कर कुसुम में राजती।
किस मसि सुरा का पान कर
क्या रंग रचना चाहती ॥ १ ॥
यह मौन मुद्रा भंग कर
लघु याचना पर ध्यान दो।
निज दिव्य प्रतिभा से हमें भी
लेखनी कुछ ज्ञान दो ॥ २ ॥
ए हेम की मंजुल लता
मुक्ता जटित बहु शोभती।
फिर निर्धनों की वीथियों में
दीन दुःख विलोकती ॥ ३ ॥
तनुता तुम्हारे गात में
गुरु ताड़ना है वज्र सी।
करती प्रहार विपत्तियों पर
कुलिश रचित कृपाण सी ॥ ४ ॥
तव मूर्ति नयन विहीन है
पर ज्ञान चक्षु महान हैं।

अवलोकने को दश दिशा
जो दिव्य दृष्टि समान हैं ॥ ५ ॥

तुम पंगु हो, कुछ उँगलियों के
बीच होकर क्रीडती।
फिर घूम कर त्र्यैलोक का
कोई न कोना छोड़ती ॥ ६ ॥

बहु रक्त रंग दिया तुम्हें
फिर भी न साँस लिवा सकी।
किस भाँति जीवित मानसों के
भाव अनुभव कर सकी ॥ ७ ॥

कर तूलिका दोनों नहीं
पर चित्रना तुम जानती।
लिपि अंक की लघु अल्पना
लख चित्र लेखा लाजती ॥ ८ ॥

बिन नासिका के सूँघती
वर पुष्प बाग विहारिणी।
सुरभित प्रसून सुरंग माला
आदि तन पर धारिणी ॥ ९ ॥

लीला ललाम विचित्र है
जिसका न वर्णन कर सकूँ।
नत शीश हो, कर हाथ आगे
बस तुम्हें अब ले सकूँ ॥ १० ॥

आओ मुझे लेकर चलो
छाया जहाँ रण रंग हो।

निज मातृ भू सम्मान हित
बहता वहाँ बहु रक्त हो ॥ ११ ॥
शृंगार राग विहार भोग
न एक दिखलाना मुझे।
मैं जन्म से हूं पीड़िता
प्रतिशोध अब लेना मुझे ॥ १२ ॥
चाहे स्वदेश समाज हो
अथवा विदेशी वाहिनी।
जो पद दलित करता मुझे
उसकी बनूँ प्रतिगामिनी ॥ १३ ॥
अंधेर नारी जाति पर
जो हो रहा युग ओर से।
उसको मिटा दूँ या मिटूँ
उद्देश दोनों एक से ॥ १४ ॥
स्वाधीनता ही ध्येय है
स्वाधीनता की कामना।
स्वाधीनता को त्याग कर
कोई न जग की वासना ॥ १५ ॥
मैं जा रही जिस मार्ग में
उस ओर आओ लेखनी।
या ले चलो उस पंथ में
जिससे बनूँ अनुगामिनी ॥ १६ ॥

पुस्तक-परिचय

सदा शारदा पाणि से पालिता,
उभय भाँति ब्रह्माण्ड की वंदिता।
सजी भाव भाषाओं की आरती,
जगे ज्योति आभास हो भारती।

भरी वाक्य पीयूष से दीपिका,
बिछी वर्ण मालाओं की पुष्पिका।
इन्हीं से क्रिया मूर्ति है संचिता,
अनेको रँगों में हुई अंकिता।

बहे भक्ति और मुक्ति की जाह्नवी,
तिरे शांति संतोष की मानवी।
जहाँ दर्शनों के खिले कंज हैं,
वहीं ज्ञान के गूंजते भृंग हैं।

छिड़ी शक्ति साम्राज्य की रागिनी,
चली द्रोह दासत्व की नागिनी।
हसीं मांस खा रक्त पा योगिनी,
घमासान संग्राम की भागिनी।

उदय अस्त मध्याह्न की शासना,
अन्याय अन्धेर की त्रासना।
प्रजा मूक के क्रोध की क्रांतियाँ,
भरीं धर्म के नाम से भ्रांतियाँ।

छिपी क्षुब्ध मानव हृदय की व्यथा,
लिखी रक्त से हैं असंख्यों कथा।
सिंचें रक्त से मेधकी वेदियाँ,
चिता में फुँकें जीविता देवियाँ।

बनें चीखती भस्म की ढेरियाँ,
बजे शंख घंटादि की भेरियाँ।
लहू लोहिता लोभ मे आगरी,
दुराचारिणी नीति की नागरी।

बनी अंध उन्माद से आतुरी,
नचे नग्न तलवार पैग़म्बरी।
झलकती जगज्जाति की सभ्यता,
छलकती मनोभाव की भव्यता।

सदाचार व्यवहार की सौम्यता,
महामान मर्याद की रम्यता।
खिंची रूप आगार की सुन्दरी,
सिंची दिव्य संगीत की माधुरी।

मिली काव्य के कुंज में कामिनी,
लखी शारदी ज्योत्सना यामिनी।

महामोह अज्ञान की नाशिनी,
विभा बुद्धि विज्ञान की हंसिनी।

सखी कौतुकी सी मनोरंजिनी,
चितेरी चतुर चाह की व्यञ्जना।

युगों से रचे नाट्य की नाटिका,
भ्रमाई हमे विश्व की वाटिका।

चढ़ाया हिमालय के जो शृंग पर,
निहारा क्षितिज देश का चौंक कर।

उतारा अतल हिन्द के सिन्धु में,
मिली नीति थी सूक्ति के गर्भ में।

उड़ाया विमानों में फिर वेग से,
समर चातुरी तीव्र थी वायु से।

तडित्तूलिका व्योम में फेरती,
प्रलय काल के चित्र थी खींचती।

फटा यान तो आ गिरा भूमि पर,
दिया अंत की ओर संकेत कर।

चलीं साथ ले स्वर्ग में संगिनी,
जहाँ घूमती लक्ष्मी पद्मिनी।

सुकर्मों के मन्दार के कुञ्ज से,
दिखाते गईं ले प्रभा पुञ्ज से।

झंकाया हमें नर्क के द्वार से,
लगी काँपने पाप के भार से।

तुला दण्ड दुष्टों को था मिल रहा,
वहीं नीच जयचन्द भी जल रहा।
लिया खींच फिर कर्म के लोक में,
दिया ज्ञान गीता के आलोक में।

ध्रुव धारणा प्रेम की साधना,
अचल हो गई कृष्ण आराधना।
निस्सार संसार की वासना,
भगीं भोग के लोभ की कामना।

छुटे जाल तन से असत पक्ष के,
मिले मंत्र इनमें मुझे मोक्ष के।
यशो गान पूरा नहीं कर सकूँ,
नमस्कार केवल इन्हे कर सकूँ।

ग्रीष्म काल

सखि क्या यह सत्य कथन है,
ऋतु होती परिवर्तन है।
मै गति विधि इसकी लखती,
पर अनुभव कभी न करती।

हूँ जग में जब से आई,
अति ग्रीष्म तपन ही पाई।
परवशता की यह झुलसन,
उर दहती उठती उलझन।

नित मेघ विधान उमड़ते,
बन के बहु रूप घुमड़ते।
एक बूँद न नीर गिराते,
बह शुष्क पवन में जाते।

मैं निज घनश्याम बुलाऊँ,
अवलोक जिन्हे हर्षाऊँ।
फिर बनी मयूरी आऊँ,
आनन्द का नृत्य मचाऊँ।

सच्चे स्वराज्य जलधारी,
वर्षें शुचि शीतल वारी।
तन मन की जलन हमारी,
बुझ जाएगी तब सारी।

नहिं कोई के प्रेम की प्यास मुझे,
सुख सम्पति कीरति को न चहूँ।
करूँ स्वर्ग निवास न स्वप्न में भी,
अपवर्ग की बात न भूल कहूँ।
सिद्धि शान्ति की छाँह छुए न कभी,
दुःख आतप में तपती ही रहूँ।
चित चातक की बस एक तृषा,
सर्वत्र सदैव स्वतंत्र रहूँ।

वे व्यर्थ लगें छिछिली सरिता,
जिनसे चिर अग्नि बुझाती नहीं।
नभ नीरद की ध्वनि क्या समझूँ,
तनके कुहरों में सुनाती नहीं।
ये सागर जो लहरा रहे हैं,
रसना इनसे रस पाती नहीं।
मृग मानस दक्ष हुआ इतना,
जिसको मरुभूमि लुभाती नहीं।

उस लू चलने में न साहस था,
तरु छाँह रहे पथिकों को दिए।

बहु चक्र बवण्डर से चलते,
जिनमें फँस के विरले ही जिए।
उस धूल में मार्ग जो ढूँढ़ सका,
कुछ काम बना उसके ही किए।
मार्तण्ड उदण्ड न हो इतना,
तिथि आ पहुँची छिपने के लिए।

प्रचण्ड ब्रिटेन कुशासन की,
लगी अग्नि है नन्दन कानन में।
भस्मांग समस्त हुए हरि हे,
बचने की न शक्ति रही तन में।
अब शेष रही अभिलाष यही,
सब भारत सन्तति के मन में।
अति शीघ्र स्वराज्य सुधा जल ले,
वर्षो घन श्याम इसी वन में।

वर्षा वर्णन

हृदयाम्बुध भारत वासियों के,
उठे हैं घन संकुल क्रान्तियों के।
दमकती सौदामिनि भाग्य रेखा,
गिरेगी जो पश्चिम में अलेखा।

गरजता है गौरव विश्व नभ में,
बरषता बहु साहस वारि भू में।
उगे हैं नव अंकुर कम तरु के,
फलेंगे फल जो रस मुक्ति भर के।

संक्रान्ति का सुन्दर मास सावन
बने हैं लघु कारागार मधुबन।
पड़े झूला रेशम रस्सियों के,
हैं झूँके ये सीधे फाँसियों के।

स्वाधीनता के नव राग के स्वर,
उठे हैं हृद तंत्री से मचल कर।
गुंजाएँगे हिमगिरि के शिखर पर,
लिख जाएँगे अम्बर के पटल पर।

रक्षा बन्धन

भ्रातृ प्रेम में रँगी हुई,
ऊषा देवी को देख रही।
इसीलिए उठकर प्रभात ही,
मैं उनसे यह पूँछ रही।

गगन थाल नीलम का भर कर,
यह रोली तुम लाती हो।
विश्व बन्धु के हित में क्या,
अपना अनुराग लुटाती हो।

स्वर्ण रश्मियों के तारों में,
रवि रेशम सा गुच्छ लगा।
रक्षा बंधन ही करने को,
बंधु वर्ग को रही जगा।

मधुर बोल विहंगों के द्वारा,
देवि तुम्हीं बोला करती।
आदि सृष्टि के दिन से अब तक,
लीला नित करती रहती।

भला तुम्हे कोई भाई भी ,
उठ कर अभिवादन करता ।
और तुम्हारे शुभ आगम पर ,
उर से आनन्दित होता ।

या मिथ्या भय भ्रम से अपना,
आँसू अर्घ लगा देता ।
चंदन पुष्प चढ़ा कर तुम पर,
लौकिक निन्दा से बचता ।

मन मोहक उत्तर पाया था,
मेरे इन लघु कानों ने ।
क्या मुझको आदर्श बनाया है,
जगती की सब बहिनों ने ।

मै निर्लोभ सदा रहती हूँ,
नहीं याचना कुछ करती ।
और पूर्णता भी मेरी,
प्रतिदान नहीं देखा करती ।

जन्माष्टमी

मोहन फिर कब आओगे ॥
मेरे नयन नीर की यमुना,
तट पर बेणु बजाओगे।
स्वछन्द कुंज का नारीजन को,
शुभ संकेत दिखाओगे।

कारागृह से भारत माँ को,
आकर शीघ्र छुड़ाओगे।
ब्रिटिश कंस साम्राज्य मिटाकर,
देश स्वतंत्र बनाओगे।
मोहन फिर कब आओगे ॥

अचल हिमाचल रथ पर से,
वह गीता गान सुनाओगे।
मोह पाश में बँधे हुए,
कब सैनिक वीर बनाओगे।

विश्व विराट रूप दर्शाकर,
जग मग ज्योति जगाओगे।
बढ़े हुए कुरु कुल यवनों का,
तुम संहार कराओगे।

आलोक अलौकिक ज्ञान दिया,
कर्म योग के भाव भरे इनमें।
संगीत कला रँग रास रचा,
नव जीवन ज्योति जगा जिनमें।

शतियों से स्वदेश सनेह भुला,
नहिं ज्ञात है जाके रमे किन में।
फिर भारत बंधन भंजन को,
जन्मो हरि आके इसी दिन में।

विजय दशमी

भारत के इतिहास गगन में,
सूर्य चन्द्र दर्शाते हैं।
त्रेता द्वापर दिवस निशा में,
स्वर्ण रजत बिखराते हैं।

जिसके संचय से यह वसुधा,
फूली नहीं समाती है।
उस अनन्त वैभव की निधि से,
रंचकता अकुलाती है।

रबिकुल में ले जन्म राम ने,
दिनमणि रूप दिखाया था।
मिटी शोक रजनी की छाया,
राष्ट्र कमल हर्षाया था।

उनके गुण गौरव की गरिमा,
मैं कैसे लिख सकती हूँ।
जिस पचण्ड मार्तण्ड प्रभा में,
दीप शिखा हो सकती हूँ।

रघुकुल गौरव की रानी को,
लंकेश्वर जब हर लाया।
रामचन्द्र तब वनवासी थे,
उर में शोक उमड़ आया।

इस पर भी उस महापुरुष ने,
रत्नाकर बँधवाया था।
भारत से लेकर लंका तक,
राम सेतु रचवाया था।

किया ध्यान फिर महाशक्ति का,
स्थापित कर रामेश्वर।
विपुल वाहिनी संग सेतु से,
पार किया खारी सागर।

छिड़ा समर लंका के भीतर,
राम और रावण के बीच।
घमासान रण कर नव दिन में,
बध डाले निश्चर सब नीच।

दशम दिवस में मारा रावण,
गिरा धरणि पर व्यभिचारी।
भगी अनी उस नर राक्षस की,
काँप उठी लंका सारी।

राज विभीषण को अर्पित कर,
बुलवाया सीता जी को।
युद्ध भूमि में दो कटकों के,
सम्मुख जब देखा उनको।

अरुण नेत्र कर कटु वाणी में,
साधारण पुरुषों की भाँति।
किया निरादर औ लांछित बहु,
गई गिरी अबला की भाँति।

कहा राम ने यह मत समझो,
तव कारण ही युद्ध किया।
रावण मे अपमानित हो,
मैंने अपना प्रतिसोध लिया।

जो जन्मा हो महावंश में,
औ कुल का हो अभिमानी।
रही दूसरों के घर की,
फिर ग्रहण नही करता पत्नी।

हटो हमारे सम्मुख से,
तुम अपना पथ निश्चित करलो।
इसजन समूँह में जाकर के,
फिर जिसे चाहती हो चुन लो।

मर्माहत हो वैदेही ने,
आखों में आँसू पीकर।
महाविपति से घिर कर भी,
वे बोलीं दृढ़ निश्चित होकर।

मनोभाव यदि थे ऐसे,
तो पहिले ही कहला देते।
नीच नरों के ही सदृश्य,
ये बातें अब मुझसे करते।

मम तन की निर्बलता आगे कर,
सद्गुण सब पीछे रखते।
जो परवशता में हरी गई,
उसका दूषण मुझ पर मढ़ते।

यह तुम्हे न शोभा देता है,
और मैं भी सहन न कर सकती।
जिस भाँति रही निशिचर पुर में,
हूँ उसकी भी साक्षी देती।

यह कहकर लक्ष्मण के द्वारा,
फिर महा चिता थी रचवाई।
व्योम व्यापिनी लपटों को लख,
सबकी आत्मा थर्राई।

शोक हर्ष से रहित मैथिली,
परिक्रमा पूरी करके।
नयन मूंद कर ध्यान स्थित हो,
बोली कर सम्पुट करके।

यदि मन वाणी और कर्मों से,
है रामचन्द्र को पति माना।
तो अग्नि देव हे जग साक्षिन्,
तुम मुझको चन्दन वन जाना।

फिर निर्भय हो महासती ने,
पावक बीच प्रवेश किया।
हवन देख कर उस देवी का,
सबने हाहाकार किया।

प्रलय कारिणी भीषण ज्वाला,
दशो दिशा झुलसाती थी।
उसी अनल के मध्य जानकी,
साँच को आँच न आती थी।

पद्मराग की सी प्रतिमा थी,
औ कांचन की दिव्य लता।
भव्य ज्योति से मुख मण्डल की,
किससे हो सकती समता।

जो ऋषिओं के रक्त दान से,
अभिशापों की जीवित शक्ति।
घट से जन्मी जनक क्षेत्र में,
पुत्री बन राजा की भक्ति।

बाल्यकाल ही में कौतुक से,
शम्भु चाप को खिसकाया।
वरा उसे जो धनु भंजक था,
वनोवास फिर अपनाया।

वृत्ति उलंघन कर लक्ष्मण की,
रावण संग लंका आती।
मृत्यु पापियों के कुल की बन.
सत लीला सो दिखलाती।

मैं प्राकृतिक क्षुद्र नारी हो,
व्यर्थ प्रयास न करती हूँ।
आज विजय दशमी की तिथि को,
मन मन्दिर में ध्याती हूँ।

जीवित हैं तरंग मालाएँ,
अब भी सागर के जल की।
वे ही वर्णन कर सकती हैं,
वड़वानल जिह्वा जिनकी।

रामसेतु की चट्टानों ने,
दृश्य दशहरा का देखा।
चित्रण करती मूक भाव से,
बना अमिट तन की रेखा।

दीवाली

जिस जाति में बीत गयीं शतियाँ,
पर दीप स्वतंत्र जला ही नहीं।
काई व्यक्ति स्वदेश की आन औ बान में,
प्रेम पतंग बना ही नहीं।
किस भाँति से खेल हुआ इतना,
जब प्राणों का दाँव लगा ही नहीं।
किसने है दिवाली मनाई यहाँ,
लक्ष्मी का निवास रहा ही नहीं।

है अंधेरा चितायें जलीं थीं जहाँ,
यह ज्योति जगी सो वहाँ पहुँचेगी।
बलि प्राणों की दी है जिन्होंने यहाँ,
उनके उर में किस भाँति लगेगी।
यह जाति कृतघ्न हो डूब रही,
किस घाट स्वदेश की नाव लगेगी।
इसी शोक की साँसे छुटेंगीं जभी,
यह दीप छटा छिन ही में बुझेगी।

कर भार से दीन दबे मरते,
ऋण अग्नि में जीवन होम करेंगे।
गिरें दीमक घास की झोपड़ियों से,
न दीप है जो कि विलोक सकेंगे।
बिन वस्त्र उघारे पड़े दुखिया,
इन जाड़े की रातों में यों ठिठुरेंगे।
फिर बोलो तुम्हीं कमले किस भाँति,
तुम्हारे शुभागम को समझेंगे।

देखो अमावस की है निशा,
बिछी चौसर चाल चलेंगे कुचाली।
कूट नीत में दक्ष बनो उनसे,
अब दाँव है मूठ दबाओ सँभाली।
नल और युधिष्ठिर के सम पूर्वज,
देश को हार गए हैं जुआँरी।
तुम जीत स्वराज्य की सम्पत्ति लो,
फिर निश्चित हो करना उजयारी।

भैया द्वीज

निज नेह की रोली औ चन्दन से,
अनुरंजित भाल सदा करती हो।
मणि बंध में फंद लगा जिसके,
चिर आयु का मंत्र सदा जपती हो।
बन तक्षक बन्धु वही डसता,
गले हार जिसे कि बना रखती हो।
किस भाँति से सत्य कहो बहिनो,
ऐसे भाई की द्वीज मना सकती हो।

हिमहास

शस्य सारी वसुधा ने धार,
जटित जिसमें मुक्ता के फूल।
करी फिर अभिनय को तैयार,
रंगशाला अपने अनुकूल।
किन्तु था उर अन्तर में त्रास॥

रचा रेशम सम नीलवितान,
खचित तारक माला के चित्र।
सरोवर दर्पण स्वच्छ विशाल,
सुसज्जित चारो ओर विचित्र।
कृषक मानस संदिग्ध उदास॥

कुवलयों के ले वादन यंत्र,
कुशीलव मुखरित मधुप समाज।
लता तरु नट नटियों के रूप,
बनाए नव नाटक के काज।
दृष्टि गोचर होता उपहास॥

दिवस निशि में मणियों के दीप,
प्रभा का बिखराते उपहार।
अंशुमाली का स्वर्ण विलास,
रजत वैभव शशि के अनुसार।
न मिलता परिषद में उल्लास॥

अहिंसा के प्रहसन का दृश्य,
दिखाकर था लेना निज राज।
और सत्याग्रह का अभ्यास,
हो रहा पाटान्तर में आज।
रक्त आभा करती परिहास॥

स्वतंत्र वैभव वसंत का दिन,
शुभागम को लेगा चिरकाल।
यहाँ पर स्वागत अर्घ्य अपूर्व,
अभी से रचना हुई विशाल।
आह! यह होगा विफल प्रयास॥

विहंगों ने कलरव के साथ,
किया मंगलमय नान्दी पाठ,
यवनिका कर संध्या की दूर।
हुआ सम्मुख पात्रों का ठाठ।
किया हिम ने तब निष्ठुर हास॥

उपल दशनों की छवि विकराल ,
दशोदिश में छाई अति उग्र ।
श्वेत माया का करने अंत ,
हुई अनशन लीला भी व्यग्र ।
इसी का था सबको आभास ॥

उठी झंझा अति होकर क्रुद्ध ,
डालती उस कौतुक पर धूल ।
कहा पहनो केसरिया वस्त्र ,
वसन्त के स्वागत को फूल ।
चली कुछ नव जीवन की स्वाँस ॥

अरुण किशलय कोमल नवजात ,
स्वति ही स्वर करते शिशु वीर ।
अरे पतझर होने के बाद ,
नवल श्री का लोहित है चीर ।
नहीं फिर अब होगा हिम हास ॥

वसंत

ऋतुराज के आगम से प्रमुदिता ,
सजतीं वसन्ती शुभ सारियाँ ,
कल गान आतीं इस धाम आतीं ,
शर व्यंग्य मारें बहु नारियाँ ।

विरागिनी निर्जन वासिनी मैं ,
अनुष्ठान रत पूरित साधना ;
न आती हूँ स्वागत अर्थ आगे ,
क्षमा की है अंतिम याचना ।

इस दृश्य से होगा ज्वार-भीषण ,
शोकाम्बुध मानस में हमारे ;
वह वारि यदि आए आँसुओं में ,
छुटेगा रँग अम्बर से तुम्हारे ,

जिस देश में नारी जाति ऐसी,
पद ताड़िता बन्धन पाश युक्ता;
किस भाँति उससे हो रंग लीला,
निलज्जिता अन्तर मान मुक्ता।

विलासिनी कामुक रंजिनी तुम,
हो धूल मेरे इन लोचनों की;
अपमानित जीवन के पुजारी,
अनुगामिनी हो उन प्रियतमों की।

न भागिनी हूँ तव रेणु पग की,
मुझ मानवी का मत ध्यान तोड़ो;
पराजिता मैं तुम हो विजयित्री,
हे देवि! अब अंचल छोर छोड़ो।

डसवाया विषधर नागों से,
काल कूट करवाया पान।
बाल न बाँका हुआ पुत्र का,
थे जिसके रक्षक भगवान॥
दर्प दमन निष्फल होने पर,
अकुलाया शासक चित में।
बुलवाई कृत्या भगिनी,
जो रहती रत उसके हित में॥ ५॥

सुनी सकल गाथा भाई से,
बोली हा इतना पातक।
कौन किया मेरे भ्राता ने,
जन्मा जो उसका घातक॥
की कुमंत्रणा फिर दोनों ने,
जीवित कुँवर जलाने की।
नाच गान औ सुरा पान कर,
होली रंग मचाने की॥ ६॥

किन्तु भक्त प्रह्लाद जन्म से,
था ज्ञानी शुभ गुण भूषित।
नहीं ग्रहण की वह विद्या,
जो करती थी तन मन दूषित ॥
कहा गुरु ने हे नरेश!
यह राज कुवर हठ करता है।
नहीं पाठ लेता शिक्षक से,
राम नाम लिख धरता है ॥ ३ ॥

कोपानल हिरण्यकश्यप का,
धधक उठा सुत के ऊपर।
बोला इसे गिरा दो गिरि से,
पल में जाएँ प्राण निकर ॥
हुआ राज आज्ञा का पालन,
बालक था फिर भी जीवित।
मृत्यु विधान किये भीषणतम,
शठता से होकर प्रेरित ॥ ४ ॥

नहीं आ रहा था वह नटखट ,
उाने क्या करके स्मरण ।
रुद्ध कण्ठ कम्पित कर द्वारा ,
था माता का निर्वारण ॥
कुंचित केश पाश कानों तक ,
नयनों की हीरक शोभा ।
निर्भय मृदु चंचल शिशुता ने ,
क्रूर दानवी को लोभा ॥ ९ ॥

हुई पराजित भोली छवि से ,
जो कटु पटु इतनी छल में ।
नहीं खीचती थी बल पूर्वक ,
करुण बनी अंतस्तल में ॥
निर्मम सहन न कर पाया जब ,
असमंजस की ये बातें ।
दौड़ घसीटा झट बच्चे को ,
दी रानी के दो लातें ॥ १० ॥

छीना झपटी में आहत हो,
गिरती माँ मूर्छित होकर।
चले वहाँ से हत्यारे,
फिर उसका जीवन धन लेकर।
भारी आयोजन उत्सव का,
चारो दिश छाया अहलाद।
वही ओढ़नी डटकर बैठी,
छाती से चिपटा प्रहलाद॥ ११

रची होलिका निशिचर कुल ने,
राजा का पाकर संकेत।
उठी अग्नि विस्तृत ज्वाला से,
फैला था लपटों का खेत॥
अपनी और पराई बोली,
पहचाने किसको अवकाश।
जलकर मर जायेगी कृत्या,
नहीं किसीको था विश्वास॥ १२।

चिल्लाट सुनता यदि कोई,
तो देता बल्लों की मार।
राज पुत्र की ही शंका में,
व्यंग्यों की करता बौछार॥
चले रंग कीचड़ गलियों में,
मस्त बने पीकर हाला।
जूते मल मूत्रादिक फेंकें,
करें परस्पर मुँह काला॥ १३॥

हा, हा, हू, हू की चहँचर में,
गन्दे गीतों की भरमार।
कामुक निर्लज्जों ने इतना,
भ्रष्ट किया होली त्यौहार॥
हुआ प्रात रजनी बीती,
औ बन्द किया जब नंगा नाच।
भस्मसात थी वही राक्षसी,
शिशु को किन्तु न आई आँच॥ १४॥

पड़ा अधमरा हिरण्यकश्यप,
समझाते मंत्री दे ज्ञान।
सूझ न कुछ पड़ता था उसको,
सम्मुख विद्रोही संतान॥
इन्ही कथाओं को सुनकर,
बचपन से धीरज धरती हूँ।
क्रूर पिता के कर्मों से,
कुछ यों ही जीवित रहती हूँ॥

प्रभात फेरी

प्रभाती गान की फेरी,
विहंगों ने लगायी जब।
मिटे साम्राज्य रजनी का,
यही वाणी सुनाई तब ॥

चली ऊषा जगाने को,
हिमाचल हिन्द सागर तक।
उठाती बंबई विन्ध्या,
पुरी बंगाल ब्रह्मा तक ॥

प्रभा अब अंशुमाली की,
हटाती छोर अंचल का।
सुना संदेश जीवन का,
छिड़कती घोल कंचन का ॥

समीरण मन्द प्रहरी ने,
सुमन का हास करवाया।
कुबन्धन चंचरीकों का,
वहीं पर शीघ्र खुलवाया ॥

चली चंचल किरण बाला,
बुझाते दीप तारक के,
झिटकती थी हरित शैय्या,
बहारे पुञ्ज हीरक के ॥

उठीं भारत भवानी यों,
प्रकृति की चित्रसारी से।
चलीं मुख आलसी धोने,
सरोवर शुभ्र झारी से ॥

कोलाहल कर रहा चर्चा,
दुःखद सपने सुनाने की।
उसे थी ग्लानि निद्रा में,
समय अपना बिताने की ॥

उसी क्षण जागरण चुपके,
स्मृति पिछली दिलाई है।
गिरे थे युद्ध में लड़कर,
थकन उसकी मिटाई है ॥

स्वराज्य साधन

जलादो अब ऐसे परिधान,
न जिनमें निज गौरव का भान।
हुए ये सब बन्धन के तार,
दिखाते जो दूसरों का द्वार॥

भगादो अस्पृश्यता का भूत,
जाति का है पूरा यमदूत।
लुटे जाते घर के सब रत्न,
इन्हे रोंको करके बहु यत्न॥

तोड़ दो इस मदिरा के पात्र,
किए जर्जर जिसेने सब गात्र।
बनाया वीरों को बलहीन,
फँसे केदरि जैसे लघु मीन॥

ढहा दो मत भेदों का दुर्ग,
एकता का ढूँढो शुभ मार्ग।
चले गिर पर सच्चे सैनिक,
देश के जो अनन्य सेवक।

उलट दो कुट नीतों का मंच,
सँभालो शासन की प्रत्यंच।
चलें ऐसे तीरों के तार,
पहुँज जाएँ सागर के पास॥

मिटादो लम्पटता का राज्य,
सजो मानव सुषुमा के साज।
करो जग जीवन को सुखमय,
होना फिर अनन्त में लय॥

स्वराज्य संग्राम

(१)

स्वतंत्रता की बलिवेदिका पर
आनन्द से आहुति प्राण की कर
हो जीवन मुक्त परतंत्रता से
उड़े हंस निर्भय स्वच्छंदता से

(२)

अहिंसा की नीति कवि कल्पना है
निश्चेष्ट काया कृत साधना है
स्वाधीनता का जब यज्ञ होगा
बहु शूर वीरों का होम होगा

(३)

जो देश कंकाल में रह गया है
मन कर्म वाणी से सो गया है
रण मेघ किस भाँति से वह रचेगा
असहयोग आन्दोलन ही चलेगा

(४)

जो जाति मिथ्या रत कल्पना में
थी सत्य प्रत्यक्ष अवहेलना में
वह मुक्ति को धरना ही धरेगी
या नाट्य फिर अनशन का करेगी

जलियानवाला बाग

जलियान वाला यदि बाग जाना
तो पादपों से यह पूँछ लेना।
हा देशभक्तों का क्या हुआ था
किस भाँति लोहू उनका पिया था॥

वे वृक्ष शोकाकुल मूक होंगे
संकेत कर - पल्लव से करेंगे
तुम क्षिप्र रेखांकित चित्र लेना
इस बालिका को फिर सौंप देना

वहाँ रेणुका लोहित वर्ण होगी
सत्याग्रही मूर्छित सी मिलेगी
औ डायरी शासन की कहानी
प्रत्येक कनिका में है समानी

जहाँ वायु क्रोधान्वित तीव्र होगी
उस रेणु से धूमिल देह होगी
पर कुञ्ज में धीर से मिलेगी
रद रक्त को ठंढा कर चलेगी

सिंची मानव शोणित से लताएँ
धधकीं जहां वीरों की चिताएँ
भ्रमतीं वहीं मेरी भावनाएँ
गुनती हुईं भीषण यातनाएँ

जो भूमि मरघट है जीवितों की
जहाँ मृत्यु शैया है शासितों की
वहीं बैठ के भारत मां सिसकती
बध हेतु डायर के मंत्र जपती

—बाल-हठ—

शुभ हेम स्वतंत्र सिंहासन में
हम भारत माँ को बिठाएँगी ही
पहिनाएँ किरीज 'सरोजिनी' जी
'कमला' चट चौंरी डुलाएँगी ही
'कस्तूरी' करें अभिषेक वसंती
'उमा' मिलि मंच उठायेगी ही
यश गान अनेक करें बहिनें
तब फूल 'बेसेंट' चढ़ाएँगी ही

यह खेल रहा शतियों से यहाँ
इस रंग में भंग मचाएँगी ही
इस बाँध गुलामी की बोरियों में
अब सागर बीच डुबोएँगी ही
नृप । भक्ति की पुस्तक फाड़ अभी
मातृभक्ति के गीत सुनाएँगी ही
हम नोच विदेश की केतुक यों
निज देश ध्वजा फहराएँगी ही

ये भारत भूमि जो रौंद रहे
इसका इन्हें स्वाद चिखाएँगी ही
जिस वेग के साथ प्रवेश किया
दुगुना कर क्षिप्र भगाएँगी ही

हमें चाह नहीं इन रक्तकों की
अब तक्षक यज्ञ रचाएँगी हीं
उसी भाँति से मंत्र में बाँध इन्हें
कर आहुति भस्म बनाएँगी ही

हठ बाल महान हुआ करता,
हठ नारियों का सँग लाएँगी ही।
युग क्रूर उदंड प्रचंड बना,
नृप के हठ से भिड़ जाएँगी ही।

इसे व्यर्थ प्रलाप नहीं समझो,
करके ध्रुव सत्य दिखाएँगी ही।
इस युद्ध में जो फल निश्चित है,
पहिले लिख कर धर जाएँगी ही।

स्त्री समाज

पशु रूप धरे पद फन्द पड़े
चलें चाबुक शीश उठाता नहीं
कपि कौतुक है तू मदरियों का
निज नाच से नीच लजाता नहीं
भयभीत शृगाल की भाँति छिपा
बन केहरि क्यों दर्शाता नहीं
गृह कूप से बाहर आके अरे!
हिम शैल शिखा चढ़ जाता नहीं

मृदु लक्ष्य बनो बधिकों के लिए
यह धर्म कहीं भी सिखाता नहीं
इन धूर्त छली पुरुषों ने ठगा
इसका इन्हें स्वाद चिखाता नहीं
मनु आदि की जल्पित स्मृतियाँ
अब फूँक के भस्म बनाता नहीं
इस तोड़ समाज कलेवर को
बन हंस अरे उड़ जाता नहीं

फँस जाल में पंख कटा अपने
पिंजरे में पड़ा अकुलाता नहीं
लिए राग पर्ती का अलाप रहा
जो गर्वा निजता सकुचाता नहीं
गुण ज्ञान के नयनों से हीन हुआ
इस जीवन से अनखाता नहीं
सुनु भारत नारि समाज अरे
तू बना है अभी मिट जाता नहीं

पाखण्ड है समाज में प्रचंड इसे खण्ड कर
करतव्य के पालने में क्यों न मिट जाओ तुम
फेंको फाड़ पर्दे को सम अधिकार लेके
'रहेंगी स्वतन्त्र' क्यों न पाठ पढ़ जाओ तुम
विप्लव की ज्वाल को जला करके विश्वहित
भीरुता भुला के क्यों न चण्डी बन जाओ तुम
मान की कमान बन किंचित लचो न कहीं
देश काज क्यों न आज फांसी चढ़ जाओ तुम

कुमाताएँ

कुमाएँ हि इस देश की मुख्य कर
हुई नाश संतान में अग्रसर
न कर्तव्य मातृत्व को मानतीं
बढ़ाना गुलामों को ही जानतीं

महा मूर्खा हैं ये मायाविनी
न कटतीं है अज्ञान की यामिनी
पिलाई पयोमय न स्वाधीनता
नसों में इसी से सनी दासता

दुर्वादिनी, दुर्दशा कारिणी
कलह कर्कशा शान्ति की हारिणी
मलिनता, विषमतामयी डाकिनी
बनी पुत्रियों के लिये नागिनी

भरा कण्ठ कहते न बनती कथा
बहे वारि होके हृदय की व्यथा
डुबी शोक के सिन्धु में लेखिका
इसी दृश्य पर गिर गई यवनिका

उपेक्षित शिशुता

शिशुता अति अबोध अज्ञान
न जिसको था निश्चित कुछ ज्ञान
शिरिष मानस अतिशय सुकुमार
न जिससे हो सकता शृंगार
भरे झलकें आँसू मकरन्द
कभी बिखरा सौरभ आनन्द
सिसकियाँ भृङ्गों की गुंजार
अव्यक्त करुणा की थी भरमार
बंधु लघु था जो शिशु नवजात
हटाया बहु करके उत्पात
चिपट माँ के वक्षस्थल से
सो रही छिपकर अंचल से
जगी जब तो जननी न मिली
धरा पर झट गिर कर मचली
हुआ फिर निज छाया का भान
भगा भय में रोने का ध्यान

बहिन के हाथों से पकवान
शक्कर पूरी मेवा मिष्ठान
छीन कर खाने लगी समोद
लार में बहता मनोविनोद
लगी मक्खी अति अकुलाई
युद्ध कर उनसे खिसियायी
एक अपने खाने का ग्रास
बन्धु मुख में ठूँसा निष्त्रास
कोलाहल से हो गई अवाक
रही निर्बुद्ध सबका मुह ताक
जन्म जीवन मरने की बात
बुद्धि बाहर था यह संघात
पिता के व्यंग्यों को सुनकर
चबाए बहु कंकड़ चुनकर
और खड़िया मिट्टी का स्वाद
लिया, मन में भारी अह्लाद
धूल कीचड़ पानी अंगार
सबों से था कौतुक व्यापार
जहाँ होता नीरव सुनसान
बैठकर कुछ करती थी गान
टोकने पर लज्जित होती
और खिसिया कर चुप जाती
अन्य का लखि लालन पालन
कीड़कों का भारी कानन

चाहती सब वे ही साधन
न मिलने पर करती रोदन
शीश धुनकर जब थक जाती
मुर्छिता सी निद्रित होती
उठा कर फिर आजी लाती
मलिन काया को नहलाती
कठिन कर से होता अति भीति
अपरिचित उर अंतर की प्रीति
अमल कोमल शीतल परिधान
चाहती थी ऐसा अनुमान
उपेक्षा से भगकर रूठती
पाँच वर्षों तक वह रहती
पिटी जिस दिन हठ करने में
बन्द की गई कमरे में
अचेतना में चुपके खिसकी
नहीं तबसे आकर सनकी

विलक्षण बाल्यावस्था

तू गोधूली में आई
जगती को जान न पाई
माँ थी परवश बंधन में
अति दुःख दरिद्र क्रंदन में
भय-निशि में क्रूर कहानी
थी सुन सुन के अकुलानी
जब ईश ज्ञान अरुणाई
वैराग्य प्रात ले आई

तप को बन जाना भाया
झुलसाई थी लघु काया
चुप आत्मघात को भागी
ले आग पकड़ अभागी
जननी ने दया दिखाई
कर क्रीड़ा फिर हर्षाई
बन बाग तड़ाग निहारे
पशु पक्षी बने दुलारे

फल फूल दूध के प्याले
दे चिड़ियों के शिशु पाले
तरु पुष्पित लता लगाई
नाटक रच सभा बनाई
पौराणिक गल्प सुहाते
अद्भुत ही दृश्य लुभाते
देवार्चन ध्यान रमाता
विद्या से किंचित नाता।

वृत दान चित्त अनुराग
फल रूप स्वर्ग था माँगा
श्रम घोर कराया जाता
सम्मुख दानव दर्शाता
विषवृक्ष समाज कुठारी
बन के ज्यों मूल प्रहारी
अम्बा के आँसू बहते
वे बाँध किसी विधि लेते

कटुता स्पर्धा बढ़ती
यदि देख निरादर पाती
कर द्वन्द युद्ध भिड़ जाती
भगिनी औ बंधु हराती

माता ने जन्म सुधारा
था वाक्य बाण जब मारा
ले पुस्तक संग सहेली
बैठी एकांत अकेली

वे कौतुक सभी भुलाये
यों द्वादश वर्ष गँवाये
कर स्थिर चपल सिधारी
वह बाल्यावस्था प्यारी

क्षणिक किशोरावस्था

श्याम निशा में मेघ पटल पर
विद्युत से चित्रित इतिहास
चौंक पड़ी पल भर में देखा
भारत का गौरव और ह्रास
उच्च शिखर अज्ञान अद्रि से
अंधकार में ज्यों उठती
कुसुम किशोर अवस्था गिर कर
व्याकुल भूतल पर लुठती

क्रांति मची थी घन गर्जन में
उपल और आँसू धारा
वर्ष रही थी जगती भर में
भगने का साहस धारा
संघर्षों की धूप छाँह में
चपल बने मन के घोड़े
बिन जाने जिसने पहनाये
बंधन वे सगरे तोड़े

उड़ी कल्पना के पंखों से
व्योम विपिन में अकुलाती
संसृति पूरी घूम रही थी
नहीं कहीं टिकने पाती
कापालिक बनती मरघट मे
अग्नि कुण्ड मे तन दहती
सिंह वाहिनी सी होकर फिर
यवन राक्षसों को बधती
स्वाँस साधकर पद्मासन में
सिद्ध लोक जाकर देखा
तड़ित्वेग से भ्रमती फिरती
उस जीवन का यह लेखा
मान दण्ड बनना चहती थी
युग लोकों का उस मन से
स्वर्ग नर्क अपवर्ग भोगती
एक इसी भौतिक तन से
बीते तीन प्रहर रजनी के
तीन वर्ष जिनको कहते
फटे पर्ण जर्जर मानस था
मिथ्या अभिलाषा करने
गीता सूर्य उदय होते ही
कर्मयोग का पथ पाया
मिटी मोह रजनी की माया
सत्य जगत सम्मुख आया

पिता

पितु गुण की गौरव गरिमा,
इस नर पुंगव की महिमा।
दिन रैन शरीर दहाती
उर अंतर प्राण सुखाती

वसुधा के चंचल भूधर
मर्याद हीन हो सागर
बिन गन्ध प्रसून कँटीले
वासवों के बाण नुकीले

तन वेध दिया है मारा
बहती शोणित की धारा
बहु भरी रक्त की प्याली
फिर उससे रची दिवाली

शैशव का कुसुम कलेवर
अति निठुर पदों से दबकर
हो गया असुध, है पीड़ा
यह तव विनोद की क्रीड़ा

है शून्य गगन बिन तारे
रवि चन्द्र हीन तम धारे
घन प्रेम न जिसमें छाये
हैं तृषित नयन अकुलाए

बन मरु प्रदेश की आँधी
चलते गति सन सन बाँधी
तरु आशा के उन्मूले
ये प्राण पथिक मग भूले

ज्वाला मुक्ति क्रोध सुलगता
अविराम अँगार उगलता
है जली पड़े बहु छाले
हा फोड़े लेकर भाले

जब हठ वश शीश हिलाते
भूकंप भूरि तब आते
लघु जीवन भवन हमारा
कर ध्वंस धरणि पर डारा

भुज व्यालों ने जब डसकर
त्यागा था मुर्छित भू पर
जननी ने जीवन रक्षा
की, माँग जगत में भिक्षा

अपराध यही था भारी
जन्मी कन्या तनधारी
इसका पूरा प्रायश्चित
करवाया है मनुष्योचित

व्रत चन्द्रायण इन्द्रायण
रखवाए धर्म परायण
बिन वस्त्रों नग्न तपाया
झुलसी पुनि काँपी काया

कह सकूँ न शेष कहानी
शोकांबुध में अकुलानी
अब रुधिर सलिल हो जाता
नयनों से बाहर आता

लो पीकर प्यास बुझाओ
निज संगम तीर्थ बनाओ
कर मज्जन स्वर्ग सिधारो
चिर शांति अमर बन धारो

स्वजन

स्वजन होते सुमनों के हार
जगत् जीवन के शुभ शृंगार
प्रेम रज्जु के बलशाली तार
मृदुल मानस के प्रिय आधार
शक्ति साहस करते संचार
सुना हमने ऐसा बहु बार
किन्तु यह सब कल्पित सपना
हमारा है अनुभव अपना

अरे ये हैं कण्टक मग में
न चलने दें चुभते पग में
बने हैं ये अब पूरे व्याल
चले उसने काले विकराल
वक्रगामी छोड़ें फुफकार
प्राण घातक निकलें विषफार
काट कर पैरों से चिपटे
भगं कैसे कसकर लिपटे

आह अब जीवन जाता है
गरल चढ़ता ही आता है
अरे क्या है कोई पर जन
हमें जो पहुँचा दे निर्जन
लहरता हो सागर का नीर
गरजता हो वारिद गम्भीर
निशा की हो श्यामल चादर
दमकती हो दामिनि छनकर

मिलेगा जब ऐसा एकांत
कलेवर वा होगा चिर शांत
स्वजन परजन निर्जन के भाव
मिटेंगे सब अन्तर से घाव
प्राप्त हो संजीवन औषधि
दूर हो तब तन मन की व्याधि

जीवन-ज्योति

अरी जगती जीवन की ज्योति
प्रलय के है मारुत का कोप
कर तनु कम्पन का अवरोध
नहीं तो हो जाएगा लोप
अभी विभु का पूरा आदेश
कहाँ तूने पाया कर पूर्ण
निशा में जो छाया तम तोम
मिटाना है तुमको सम्पूर्ण
जला कर हृद दीपक से रक्त
प्रबल बन, कर इससे संग्राम
निरंतर तू जलती रह देवि
न किंचित भी करना विश्राम
भरोसा क्या तारक हैं क्षुद्र
पथिक फिर भी घूमेंगे भ्रांत
तुझे ऊषा से है अनुरक्ति
वही तुझको देगी कर शांत

सुलेखक चन्द्र

किसी समय पर एक महाशय
अपने मान उपवन के बीच।
बने भ्रमर गुंजन करते थे
अभिलाषित कुसुमों के बीच।

इस युग के साहित्य सृजन मे
कलाकार दर्शाते हैं।
हिन्दी भाषा के मन्दिर में
कांचन कलश सजाते हैं।

जिसे देख कर आलोचक बहु
तारक रूप बनाते हैं।
क्षणिक निशा में झिलमिल करके
कीर्ति प्रभा बिखराते हैं।

पर मैं इतना पढ़ लिख कर भी
एक खद्योत न बन पाया।
इसी बात पर कुछ लोगों ने
मुझको नीच बना पाया।

—भ्रमरालोचक—

कभी एक आलोचक जी ने,
भ्रमर उपाधि कमाई थी।
जब कि विपक्षी दल के ऊपर
कलम कुल्हाड़ उठाई थी
आज लेखनी फिर अपनी
वे अंधाधुन्ध चलाते थे
बीच-बीच में हृद तंत्री के
तारों को झनकाते थे

इस साहित्य सुमन कानन में
भ्रमर बना मैं गूँज रहा
प्रतिभा मधु साहित्य प्रेमियों
का जी भर कर चूस रहा
कभी-कभी तो कुछ कुसुमों को
ऐसा शोषित करता हूँ
नहीं कभी फिर इस जीवन में
विकसित होने देता हूँ

उन्हें विरोधी होने पर भी,
निज प्रसाद दे देता हूँ।
पीन कालिमा मुख मण्डल में
भौंरा सा कर देता हूँ
यदि करील के पुष्पों में भी
इच्छित सौरभ पाता हूँ
भ्रमर गीत गा गा कर उनको
प्रियतर कंज बनाता हूँ
मुझको मित्र बंधुओं ने
जो किया विभूषित पदवी से
वे भी हैं अनभिज्ञ बेचारे
अब तक पूर्णतया इससे।
भाषा के इस वृहत विपिन का
आलोचक माली बनता
चक्र चला कर काट छाँट का
उपवन सा करता रहता
या साहित्यिक पशुओं की
वह सींगों पर बैठा रहता।
और नकेलें घुमा फिरा कर
सीधे ही चलने देता।

मुझको तो कुछलोगों ने,
अब परशुराम बतलाया है।
और बनाकर व्यंग चित्र भी,
परसा लिए दिखाया है।
किन्तु हानि क्या है इसमें,
मैं वही रूप दर्शाऊँगा।
इन लेखक सम्राटों को,
रण करके ही दिखलाऊँगा।
यह कहकर प्रतिवादी की कृति के,
पन्ने कुछ उलटे पलटे।
और युद्ध करने के हित से,
उसी कुठारी पर झपटे।

कवि क्रीड़ा

कवि सम्मेलन की तिथियों को
पढ़ कर कवि जी हर्षाए।
पूर्ति समस्याओं की धुनि में
फिर वे किंचित अकुलाए।
उठ कर झट पहुँचे बैठक में
उसे काव्य शाला मानो
कवि क्रीड़ा आरम्भ हुई
तुम जिसे पद्य रचना जानो
कन्दुक और कबड्डी घूंसा
छन्दों को पहले लिख कर।
मान दण्ड से करके देखे
पूर्व समस्याएँ रख कर।
लेखा ज्योढ़ा हुआ न पूरा,
तब लम्बा रस्सा रचकर।
खींचा तानी की घंटों तक,
केंचुए का फन्दा देकर।

थके छोड़ कर जा बैठे
औ पिंगल पर अतिशय खीझे।
देख अविष्कारों को अपने
लोट पोट होकर रीझे।
अँग्रेजी की भाँति करूँगा
अपनी रचना पूर्ण स्वतंत्र।
जैसी हिन्दी बनी अभागी
थी वैसी कविता परतन्त्र।
किन्तु संस्कृत श्लोकों को
अब मैं बैल बनाऊँगा।
अपने वृत्तों की गाड़ी
फिर उनके पीछे जोतूँगा।
कवि ने गंत्री के पथ में
जब गति यति के देखे रोड़े।
एक हथौड़ा पद के द्वारा
वे सगरे पत्थर तोड़े।
काव्य अखाड़े के दिन को
जब स्मरण कर सम्मुख देखा।
मुगदर छन्द घुमा कर अपने
कन्धों का पौरुष परखा।

पुरस्कार के बकरं का

फिर निरहिंसक ने ध्यान किया।

वहीं उसी क्षण नर पुंगव ने

अजगर पद को जन्म दिया।

बने सँपेरा सम्मेलन को

मन में कौतुक करते थे।

टन-टन-टन-टन चार बजे

पर अब भी भूखों मरते थे।

गरुड़ मन्त्र जप कर जल्दी से

कण्ठ पिटारे में रोका।

औ' हण्डा भर दूध मंगा कर

इसी लिए पल में सोंका।

सम्पादक-सन्तोष

लातों से रौंदे आँटे की
अध कच्ची रोटी खाते।
बिना नमक की घास उबाली
तरकारी चीखा करते

फटा पुराना कम्बल पाकर
जाड़े भर पैंटा करते।
नित्य धमकियाँ जेलर की सुन
चक्की को पीसा करते।

बन्दीगृह में सम्पादक जी
पड़े हुए काँपा करते।
और मूर्खता को अपनी
वे मन ही मन कोसा करते।

आह मुझे मित्रों ने मिलकर
लक्ष्मी रूप दिखाया था।
क्रान्ति पत्रिका निकला कर
सम्पादक मुझे लिखाया था।

भाँति भाँति के लेखों से
वे युवकों को हुमकाते थे।
जिन्हें बाँच कर अधिकारी जन
भृकुटी धनुष चढ़ाते थे।

मुझे किराए का टट्टू कर
आगे सदा चलाते थे।
किन्तु बाण वर्षा होते ही
मिलकर सभी बचाते थे।

यों ही मेरे यश का डंका
जनता भर में बजता था।
देश भक्ति की लिए पताका
चन्दे का धन उड़ता था।

इसी बात पर कुचक्रियों ने
मुझको चुपके फँसवाया।
एक लेख के शीर्षक पर
जब जिलाधीश ने बुलवाया।

खड़ा अकेला न्यायालय में
मुखबिर बनना चहता था।
इस दुर्गति से बचने का
बस सोलह आने निश्चय था।

सम्मुख जन समूह को देखा
नारे लोग लगाते थे।
वन्देमातरम् की ध्वनि से
सिर पर आकाश उठाते थे।

लज्जा लगी हृदय में अतिशय
कुछ न बना करते धरते ।
बना हुआ मैं वहाँ अचल था
चित्त रहा हिलते डुलते ।

साँप छछुन्दर की गति में था
पर इस ओर सचेष्ट हुआ ।
देश प्रेम में फँस कर ही
मैं ऐसा चकनाचूर हुआ ।

डट कर इस गोराशाही का
फिर मैंने प्रतिवाद किया ।
तीन वर्ष के कारागृह का
दण्ड वहीं पर ओढ़ लिया ।

धूम धाम से बन्दी घर में
आने पर सन्तोष किया
किन्तु वीरता का अपनी
मैंने पूरा फल भोग लिया

पति परमेश्वर

संध्या समय जब बिछी लालिमा
तभी एक पति भाव की कालिमा
हृदय से चली ओठ पर आ गई
भ्रमर तुल्य वह भुन-भुना-सी रही
जाता हूं मैं इस समय चौक में
जहाँ घूमता रात भर शौक में
कभी श्रीमती की लड़ाई के कारण
करता था जल्दी ही घर मे पधारण
लेकिन जब से पट्टी पढ़ाई है हम
हुए तब से पूरे ही निर्द्वन्द हम
लड़ीं एक दिन हमसे वे रात को
खोले तुम्हें कौन अध रात को
विधर्मी कुकर्मी जो होए पती
तो पत्नी भी उसकी बनाए गती
दे दुष्ट ऐसे को परित्याग कर
बहिष्कार कर दे तिरस्कार कर

क्या करें अब तो परदे में परतंत्र हैं
बनी मूर्ख हम सब न स्वतन्त्र हैं

सुन करके यह वक्तृता कोप कर
कहने लगे उनको तब डाँट कर

देखो तनिक खोलकर शास्त्रों को
लिखा उनमें क्या है गया स्त्रियों को

पुरुषों के हैं पैर की जूतियाँ
बनी उनके ही भोग को युवतियाँ

पुरुष उनके जूते लगाया करें
परन्तु न वे सिर उठाया करें

उन्हें स्वत्व रखना उचित ही नहीं
अधिकार हम पर तुम्हारा नहीं

चाहे लाख का घर करें खाक हम
धन धर्म मर्याद सब एक दम

वेश्या के चरणों में रहा करें
तुमको उठा कर जूओं पर धरें

पर तुमको जिह्वा डुलाने का भी
न अधिकार है और न होगा कभी

यह कर्तव्य तुमको सिखाना हमें
जो आज्ञा है हिन्दू धरम में तुम्हें

लौटें जभी रात्रि को घूम कर
पखारो चरण ये तभी चूम कर

फूल अक्षत और चन्दन चढ़ाया करो
संग आरती के घण्टी बजाया करो

लाके नैवेद्य पूरा लगाया करो
जो बचे शेष जूठन सो खाया करो

सदा नाम स्वामी उचारा करो
सम्प्र दासी बनी मन लुभाया करो

ध्यान भ्रू भंगिमा पर जमाया करो
फिर उसी भाँति आज्ञा बजाया करो

पातिव्रत की तलवार धारण करो
इन्द्र आसन यहीं से हिलाया करो

आर्य आदर्श देवी कहाओगी तब
मेरे मरने से जीते ही जल जाओ जब

आत्म अस्तित्व इच्छाएँ तृण तुल्य कर
बहा दो हमीं सिन्धु में फेंक कर

सभा और संस्थाएँ जो है बनी
वहीं दूषिता नारियाँ हैं घनी

तुम भूल कर भी न जाना वहाँ
तुम्हारे जगन्नाथ बैठे यहाँ

माना कि हम नीच अज्ञान हैं
तुम्हारे लिए किंतु भगवान हैं

सुनना जो निन्दा किसी से कभी
स्व प्राणों को तुम होम देना तभी

ये बहुमूल्य उपदेश मन में गुनो
सती द्रौपदी और सीता बनो

माता के सरवन

पढ़ते थे माँ के सरवन
कमरे में बैठे अपने।
आ करके डाकिया तब
बाबू के सामने।

बोला कि पत्र लो जी
फिर फेंक कर सिधारा।
पढ़ने लगे उठा कर
छाया था सुनहरा।

वह पत्र था निमंत्रण
मिंटो के घर से आया।
सम्मान प्रार्थना से
था भोज में बुलाया।

वे बाँचते हि उसको
उठ कर लगे टहलने।
मदान्ध सिन्धु होकर
इस भाँति लगे बहने।

बाहर है मान इतना
घर में हूँ पर मैं गद्धा
सचमुच हि स्त्रियों का
होता स्वभाव भद्दा

कल ही की बात है
जब अम्मा ने कहा जाओ
धोबी के घर से मेरे
कपड़े धुले ले आओ।

उनके यह वाक्य ने
इन कानों को छेद डाला।
क्या खूब अब हुआ मैं
कपड़ों का लाने वाला।

हम लोग उच्च शिक्षित
पानी स्वयं न पीते।
नौकर व स्त्रियों पर
नित राज्य करके जीते।

कोई पढ़े लिखे यदि
कुछ काम धाम करते।
मेरी समझ में अपनी
वे नाक ही कटाते।

इन मूर्खों से बन कर
ऐसी हंसी कराते
सब आन बान खोकर
विद्या को भी थुकाते

उनका समाज में क्या
सम्मान यही होगा।
उस घोर परिश्रम का
यह पुरस्कार होगा।

यह देश उठ चुका बस
शतियाँ अभी लगेंगी।
ये हड्डियाँ पुरानी
कब तक चला करेंगी।

यह सोच करके मेरे
आँधी चली हृदय में।
क्रोधाग्नि जग पड़ी बस
पूरे शरीर भर में।

इच्छा हुई कि उनको
उस आँच में तपाऊँ।
धोबी की भाँति सगरे
वस्त्रों को भी सुखाऊं।

किन्तु ध्यान आया
माता हैं ये हमारी।
करके हृदय को स्थिर
क्रोधाग्नि भी सँभारी।

पीछे विचार कर फिर
आगे के लिए इनको।
देदी चेतावनी बस
सीधा न जाने हमको।

कहने लगे तो उनसे
ओठों को हम चबाते।
कहता जो और कोई
तो दुष्ट को बताते।

इस पर हि आज अम्मा
मैं शोक कर रहा हूँ।
इतना तो खोल कर मैं
तुम से भी कह रहा हूँ।

यह मानता कि तुमने
इतना मुझे पढ़ाया।
और जानता हूं कैसे
वह खर्च था उठाया।

पर अब रहा न सरवन
मैं हो गया महाशय।
सम्मान करो मेरा
यह है यथार्थ आशय।

मुझको बनाया गदहा
डिगरी को समझी दुम।
यह मूर्खता तुम्हारी
सठिया गई हो तुम।

—छात्र की चातुरी—

जब दीक्षान्त के दिन पर,
चतुर गाउन पहिनते थे।
तो पिछिली सोच करतूतों को,
मन में मुसकराते थे।

सदा फुटबाल हाकी में,
बहादुरी में दिखाता था।
या नाटक औ सिनेमा में,
समय अपना बिताता था।

इधर मित्रों के मण्डल में,
गपें शप्पे लड़ाता था।
उधर कमरे में वेश्याओं के,
जाकर रँग मचाता था।

समय आया परीक्षा का,
लगा भैया तो थर्राने।
वे बातें हो गईं चिड़िया,
उटा सबकी बगल तकने।

कभी जाकर के मन्दिर में,
यह मस्तक टेक देता था।
जो पहिले मूर्ति पूजा की
हँसी ठट्ठा उड़ाता था।

मिले जो ज्योतिषी पंडित
तो झुककर पैर छूता था।
उन्हें फिर कुण्डली देकर
ग्रहों की गति दिखाता था।

चढ़ा मुझ पर सनीचर है
यह सुनते काँप जाता था।
इसी की सूचना पहिले से,
माँ को भेज देता था।

बनाए रूप में शनि का
सदा चक्कर लगाता था।
कभी अध्यापकों के घर में
चटुकारी सुनाता था।

कभी मिल प्रेस संचालक से
मनका भाव लेता था।
किसी विधि मंत्र पाता ही,
जिसे संकेत कहता था।

इसी धुन में बहुत पैसा
पिता का फूक तापा था।
उसी कीपूर्ति करने को,
तुरत माता से ऐंठा था।

पहिले दिन परीक्षा में
डरा फिर दिल कड़ा करके
पहिन अचकन औ पैजामा को
बैठा जाके डट करके

भरा अनुवाद टोपी में
लिखा कुछ आस्तीनों पर
खिचाए सूत्र फिर नीचे
उसी अचकन के पल्लों पर

आया सामने परचा,
तो टोपी खींच ली सिर से।
रक्खी पास में अपने
तनिक ही दूर परचे से।

उधर देखूँ इधर कापी में
चट ही सरसराता था।
जभी आते निरीक्षक जन
तो सिर को गाड़ लेता था।

इति श्री कर प्रयोजन की
पहिन ली शान्ति की माला
मुझे अवलोक पद्मासन में
उल्लू प्रोफ़ेसर बोला

हैं, सब प्रश्न कर डाले
क्या इतनी शीघ्रता ही में।
जी हाँ कहके मुँह नीचा
किए, हँसता रहा मन में

जी में तो यही आया कि
कह दूँ ऐरे उल्लू चन्द
जो ऐसा ही चतुर होता
ठोका जाता न गदहा चन्द

कई छात्रों औ हमने मिलके
उस दिन खूब पीटा था।
हमारे मित्र चन्दू ने तो
जूता तक जमाया था।

पर इतना हुआ लज्जित,
किसी से की न चरचा तक।
मिली मिट्टी में प्रोफ़ेसरी
रहेगी याद मरने तक।

फिर इस रोक बाणी को,
हुआ कमरे से बाहर मैं।
यही कर्त्तव्य कर सब दिन
किसी बिधि पार पाया मैं।

परीक्षा फल निकलने पर
सभी आश्चर्य करते थे।
हमी अपनी सफलता की
कठिन कुन्जी समझते थे।

पिसे थे जो कि दो वर्षों से
उनका मुँह हुआ काला।
हमारी रँग रलियों ने हि
पहिनाई विजय माला।

—काया पलट—

लक्ष्मीचन्द्र बंगले में
लगे दर्पण के सम्मुख थे।
मुँहासे फोड़ते अपने
उसी पर झुलझुलाते थे।
देखो तो इन्हीं दुष्टों ने
सुन्दरता करी नष्ट।
इसी कारण से बस मेरा
सभी फैशन हुआ नष्ट।
नहीं तो शक्ति भर अपनी
उठा कुछ भी न रखता हूँ।
यही काया पलट करने में
दिन भर व्यस्त रहता हूँ।
मरे थे जिस समय दद्दुआ
उसी दिन मुँछ मुड़ाई थी।
कटाये बाल फिर ऐसे
कि चोटी तक उड़ाई थी।

लेकिन जबतक रहे जीवित
इसी पर तंग करते थे।
निकालूँगा अभी घर से
सुनाकर प्राण खाते थे।
हुआ उद्धार अब मेरा
अकंटक राज्य करता हूँ।
पुरानी श्रीमती छोड़ी,
नई की खोज करता हूँ।
क्लबों और होटलों में जाके
मिसियों से भी मिलता हूँ।
रिझा कुत्तों के द्वारा फिर
बिठा मोटर में लाता हूँ।
बगल में लेके फिर उनको
सिनेमा में पहुँचता हूँ।
करूँ क्या शोक है इसका
न गाँठी जोड़ पाता हूँ।
ये चमड़े ही की त्रुटियाँ हैं
जो काला हो पड़ा मेरा।
न साबुन पाउडर स्नो
है कर सकती जिसे गोरा।

इसी से दूध पानी में
मिला कर ही नहाता हूँ।
लगाता तेल वह सिर में
जो कोसों से महकता हूँ।
सिला अंग्रेज दर्जी से
सदा कपड़े पहिनता हूँ।
यहाँ की जूतियाँ तक भी
न पैरों में छुआता हूँ।
विदेशी वस्त्र की होली
कभी जब देख पाता हूँ।
वही लीला तभी खद्दर की
करके मैं दिखाता हूँ।
धोती की कहानी तो
मुझे अब तक झेपाती है।
वही मिस मार्च के कमरे की
घटना याद आती है।
उसी दिन से न मैं बाबा
कभी धोती पहिनता हूँ।
सदा पतलून पैजामा
औ नेकर में विचरता हूँ।

कभी तो मैं नवाबों सा
बना बग्घी में चढ़ता हूँ।
कभी फिर जान बुल होकर
स्वयं मोटर चलाता हूँ।
कसा जितना गया पहिले
वहीं रस्सी तुड़ाई है।
गधा से बैल बनने की
सनक मनमें समाई है।
हमारा देश भारत है
नही योरोप में रहता हूँ।
इसे ब्राँडी की बोतल के
सहारे ही भुलाता हूँ।
हमारे भाग्य थे फूटे
लिया जो जन्म भारत में।
नहीं तो क्यों न हम
पैदा हुए जाकर के पेरिस में।
रियासत बेच कर अपनी
गिरों बंगले को रक्खूँगा।
रहूँगा जाके पेरिस मे
कभी भारत न लौटूँगा।

हुआ व्यवहार समता का
तो कालापन मिटाऊँगा।
नहीं तो ठोकरें खाके
यहीं मुँह फिर दिखाऊँगा।